# गुप्तकाल में कृषि व्यवस्था

**Pardeep Kumar**
**Research Scholar**
**Departmant of History**
**M. D. U. Rohtak**

**शोधसार :**

गुप्तकाल के बारे में हमें साहित्यिक तथा पुरातात्विक दोनों प्रमाणों से पता चलता है। 319 ई0 से 550 ई0 तक गुप्तकाल के नाम से जाना जाता है। इसी समय गुप्त शासकों ने राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में अत्यन्त उन्नति की थी। तत्कालीन कृषि व्यवस्था पर भी इसका प्रभाव पड़ा था। प्रस्तुत शोध पत्र में कृषि व्यवस्था के अन्तर्गत भूमि के प्रकार, भूस्वामित्व कृषि व तकनीक, सिंचाई के साधन और भूराजस्व के बारे में लिखा गया है।

**भूमिव्यवस्था :**

गुप्त काल में कृषि के क्षेत्र में वृद्धि हुई थी इसका कारण इस काल में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में हुआ विका था साथ ही कृषि राज्य की आर्थिक व्यवस्था का आधार थी। भूमि का विभाजन उसके उपयोग के अनुसार किया गया था। तत्कालीन साहित्यिक विवरणों से हमें भूमि के प्रकारों के बारे में पता चलता है। अमकोश[1] ग्रन्थ जो अमरसिंह द्वारा लिखित है इसमें भूमि के 12 प्रकारों का वर्णन है। जैसे– उर्वरा (उपजाऊ भूमि), ऊसर (रेहयुक्त नोनी मिट्टी), मरू (रेगिस्तान), अप्रहत (बंजर), शड्वस (घास वाली भूमि), पंकिल (कीचड़ युक्त), जल प्रायमनुपम (नम भूमि), कच्छ (समुन्द्र तट के किनारे वाली जमिन), शर्करा (पथरीलि भूमि), नदीमात्रिका (नदी द्वारा सिंचित भूमि) और देवमात्रिक (वर्षा से सिंचित भूमि) इत्यादि का वर्णन मिलता है। इस काल में हमें खेती योग्य भूमि, व्यर्थ भूमि, निवास स्थान वाली भूमि, बाग–बगीचे तथा चारागाह आदि की जानकारी मिलती है।

मिट्टी के किस्मों के आधार पर वराहमिहिर ने भूमि की चार प्रमुख कोटियाँ बतलाई हैं, सफेद, लाल, पीली और काली।[2] यह विभाजन उन्होंने कृषि की दृष्टि की बजाए निवास के आधार पर किया है। कृषि की दृष्टि से उन्होंने ब्राह्मणों द्वारा प्रशासित भूमि को ही अधिक उपयुक्त माना है। कृषित भूमि दो भागों में विभाजित थी, एक शुष्क भूमि और दूसरी नम भूमि।

जनसंख्या वृद्धि आदि कारणों के फलस्वरूप गुप्तकाल में सभी प्रकार की भूमि की माँग बढ़ी होगी। राजा द्वारा भी अकृषित भूमि को कृषिगत बनाने के लिए प्रायः परती भूमि एवं बंजर भूमि को दान कर दिया जाता था। गुप्तकाल में भूमि के सभी प्रकारों (खिल, वास्तु और अप्रहत) को कृषकों तथा समाजों के अन्य वर्गों द्वारा प्रयोग में लाया गया था।[3]

**भूस्वामित्व :**

स्मृतिकारों के अनुसार राजा भूमि का मालिक माना गया है। मनु और गौतम जैसे स्मृतिकारों ने राजा को भूमि का अधिपति बताया है। फाह्यान ने राजा को भूमि का स्वामी बतलाया है, किन्तु नियमित रूप से भूमि कर देने वाले कृषक अपनी जमीनों के वास्तविक स्वामी थे। राजा को उनकी भूमि का वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं था। भूराजस्व अदा किए बिना खेत छोड़कर चले जाने वाले कृषकों की भूमि को राजा बेच सकता था। मनु ने यह भी कहा है कि भूमि उसी की है, जो भूमि को जंगल से साफ करके सबसे पहले जोतता है। परन्तु बृस्पति और नारद स्मृतियों में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति का जमीन पर मालिकाना अधिकार तभी माना जा सकता है। जब उसके पास कानूनी दस्तावेज हो। अगर साधारण नागरिक कोई जमीन खरीदना चाहे तो उसे राज्य से अनुमति लेनी पड़ती थी। इसी परिवार का कोई भी सदस्य अन्य सदस्यों की अनुमति प्रदान कर परिवार की सम्मिलित भूमि में से अपने हिस्से की जमीन बेच सकता था। गुप्तकाल में स्मृतिकारों ने सभी प्रकार के लावारिस संपत्तियों को प्राप्त करने का अधिकारी राजा को ही माना हैं भूस्वामित्व के सन्दर्भ में भूमि पर स्पष्ट रूप से राजा और व्यक्ति दोनों का अधिकार माना जा सकता है।

**कृषि एवं तकनीक :**

गुप्तकाल में आर्थिक प्रगति के दौरान ही कृषि संबंधी तकनीक में भी विकास हुआ। इस परिवर्तन के बावजूद प्राचीन पारम्परिक तरीके भी अपनाये जा रहे थे। हल उन दिनों कृषि का महत्वपूर्ण उपकरण था।[4] अमकोष में हल के अनेक भागों का वर्णन है जैसे– हरिश, जुआँ, सइल, हरैली और फाल आदि। कालिदास ने अपने समय में बैलों द्वारा खेतों को जोतने का उल्लेख किया है।[5] वराहमिहिर ने भी बैलों की विशिष्टता के बारे में वर्णन किया है कि श्रेष्ठ बैलों में कौन–कौन–सी विशेषताएं होनी चाहिए।[6] हल के बाद दूसरा कृषि उपकरण कुदाल था। बैलगाड़ियों का उपयोग भी कृषि में किया जाता था।

गुप्तकालीन कृषि व्यवस्था के अन्तर्गत कृषि प्रक्रियाएं जैसे– खेत जोतना, बोना सिंचना, काटना आदि की जाती थी। जुताई (कर्ष) का प्रारम्भ उपर्युक्त काल एवं ऋतु से होता था। इसके लिए स्मृतियों में शरद एवं बसन्त ऋतु माना है। वर्षाकाल को कृषकों के लिए वरदान माना गया है। भूमि को कई बार जोतना अच्छा समझा जाता था। उसके अलग–अलग नाम दिये गये थे। बृहस्पति स्मृति में लिखा है कि जोती हुई या बोई हुई भूमि को दान करने वाला व्यक्ति स्वर्ग का अधिकारी है।[7] इसके साथ ही सामूहिक खेती करने के उल्लेख भी मिलते है।

बुआई को 'वाप' कहा जाता था। बुआई का समय वर्षाकाल उत्तम माना है। स्मृति साहित्य में कृषकों के बुआई करते समय कुछ महत्वपूर्ण बात लिखी मिलती है। जिनमें बुआई, समय, बीज की मात्रा, नम और उपजाऊ भूमि आदि का वर्णन है। कुछ फसलो को बोने के बजाय रोपा भी जाता था। कृषक उपज को बढ़ाने के लिए पूजा–पाठ और यज्ञ आदि भी करते थे।

फसल के पकने पर उसकी कटाई की जाती थी। जिसे लाव भी कहा जाता था। शरद ऋतु में धान की फसल पकने पर उसकी कटाई की जाती थी। कटाई के पश्चात फसलों को एक खुली जगह पर एकत्रित किया जाता था इसके बाद इसमें से भूसा व अनाज दोनों को अलग–अलग किया जाता था। इस प्रक्रिया को 'मणनी' अर्थात् गाहन कहा जाता ाि। भूसा व अनाज अलग करने को निष्पाव नाम दिया गया था। कटी फसलों को बैलगाड़ियों के द्वारा एकत्रित किया जाता था। मणनी के अतिरिक्त धान्य राशी को लूप पर फटककर भी निप्पाव कर लिया जाता था। वायु के माध्यम से अनाज अलग किया जाने के उल्लेख मिलते हैं।खेती कार्य के समाप्त कोने पर कुछ धार्मिक अनुष्ठान भी किये जाते थे। बाद में अनाज को मापकर कोष्ठागारों में भर दिया जाता था।

**सिंचाई प्रक्रिया :**

गुप्तकाल में जिस तरह से भूमि को कई प्रकार में बांटा गया था। इसके आधार पर सिंचाई के दोनों साधन प्रयोग में लाये जाते थे प्राकृतिक और कृत्रिम। प्राकृतिक सिंचाई के प्रमुख स्रोत वर्षा, नदी, झील, व झरने थे। जबकि कृत्रिम सिंचाई नहर तालाब, कूप और जलाशय से सम्पन्न की जाती थी। कालिदास की रचनाओं में सिंचाई के संबंध में कई उल्लेख मिलते हैं। कृषि सिंचाई के माध्यम से ही अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न करती है। कालिदास ने कई नदियों का भी वर्णन किया है।[8] जैसे– सिन्धु, गंगा, यमुना, मंदाकनी, क्षिप्रा और ब्रह्मपुत्र आदि।

नदियों के अतिरिक्त प्राकृतिक सिंचाई के साधनों के रूप में झीलों तथा झरनों का वर्णन है। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ लेख में भी सुदर्शन झील का उल्लेख है। कृत्रिम साधनों का भी उपयोग होता था। अमरकोष में पानी खींचने वाले एक यन्त्र को घटी यन्त्र बाणभट्ट ने भी हर्षचरित्र में थोड़ा बहुत वर्णन सिंचाई के संबध में मिलता है। कूपों के अतिरिक्त तालाब भी सिंचाई के कृत्रिम साधन थे। चीनी यात्री हवेग सांग ने भी इसका अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है। इसके अलावा नहरों से भी भूमि सिंचित की जाती थी। अमरकोष में इन्हें 'कर्षू' कहा गया है। नहरों से सिंचाई का एक महत्व भी था, ये नदियों के जल को नियंत्रित करके बाढ़ आदि को कम करके फसलों को नष्ट होने से बचाती थी इसलिए इन्हें जल निर्गम कहा गया है।[9]इस तरह हमें इस काल में कृषि के लिए सिंचाई के साधनों का वर्णन मिलता है। गुप्तकाल में मौर्यकाल की तुलना में सिंचाई के पर्याप्त प्रबंधों का अभाव भी प्रतीत होता है।[10]

**भू–राजस्व :**

गुप्तकाल में प्रशासनिक उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए राजस्व की क्या व्यवस्था थी यह स्पष्ट नहीं है। फिर भी इस संबंध में समुद्रगुप्त के शासन काल के नौवें वर्ष का गया दानपत्र तथा पाँचवे वर्ष का नालन्दा दानपत्र उल्लेखनीय है। इस तरह भाग के रूप में एक साधारण कर का वर्णन है। जिसे संभवतः उपज का 1/4 से लेकर 1/6 तक होता था। इसे ही भाग कहा जाता था और मुख्यतः अनाज के रूप में लिया जाता था।

चीनी यात्री फाहियान के अनुसार ''जो सरकारी भूमि पर खेती करते है। केवल उन्हीं को उससे होने वाली प्राप्ति का एक अंश देना पड़ता था।'' जिसका आशय यह है कि राजस्व मुख्यतः राजकीय भूमि के लगान से ही प्राप्त होता था।[11] नारद स्मृति में उल्लेख है कि कृषक राज्य को उपज का 1/6 भाग भूमि कर के रूप में देते थे।[12] नगद रूप में लेने पर इसे हिरण कहा जाता था। मनु के अनुसार जमीन की उर्वरता के अनुसार 1/6, 1/8 या 1/2 भाग कर के रूप में लिया जाता था। गुप्त कालीन अभिलेखों में भी भाग और भोग का संयुक्त रूप से उल्लेख मिलता है। अभिलेखों में कर के कई प्रकारों में सिर्फ तीन के ही नामों का उल्लेख है। उद्रंग और उपरिकर भी अन्य कर थे। इनका वर्णन गुप्तकाल में ही पहली बार हुआ था।

उपरोक्त गुप्तकालीन कृषि अवस्था के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन से तत्कालीन स्थिति को आंका जा सकता है। भूमि के प्रकार के संबंध भूमि की विशेषताओं के आधार पर अलग विभाजित किया गया था। भूस्वामित्व के संबंध में राज्य की भूमि पर स्पष्ट रूप से राजा और व्यक्ति सामान्यतः दोनों का अधिकार माना जा सकता है। कृषि एवं तकनीक में मौर्य से ही प्रचलित कृषि प्रणाली को ही आधार बनाया गया था इस काल की कृषि प्रणाली में जुताई, बुआई (वाप), कटाई (लाव) और मणनी (गाहन) शामिल थी। सिंचाई के साधनों में प्राकृतिक (वर्षा, नदी, झील) और कृत्रिम (नहर, तालाब, कूप) से सम्पन्न की जाती थी। गुप्तकालीन भूराजस्व उपज का 1/4 से 1/6 तक लिया जाता था। जो भाग, भोग हिरण, उद्रंग और उपरिकर आदि के रूप में एकत्रित किया जाता था।

**सन्दर्भ ग्रंथ सूची :**

[1]अमरकोष– 1/5–6, पृ0– 70–71

[2]वृहतसंहिता, 96–97

[3]यादव, शकर, प्राचीन भारत में कृषि एवं कृषकों की दशा, पृ0 36

[4]अमरकोष– 2/9/13–14

[5]उपाध्याय, भगवतशरण, कालीदास और उनका युग, पृ0 158

[6]वृहतसंहिता– 7

[7]बृहस्पति स्मृति– 13/31

[8]उपाध्याय, भगवतशरणः कालीदास एवं उनका युग, पृ0– 158, 159

[9]मैटी, एस. के., इकनॉमिक लाइफ इव नार्दन इण्डिया इन द गुप्ता पीरियड, पृ0– 117

[10]शर्मा, आर. एस., प्रारम्भिक भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास, पृ0– 200

[11]वी0 ए0 स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया चतुर्थ संस्करण पृ0– 314

[12]नारद स्मृति– 11/23